The Academic
International Journal of Multidisciplinary Research

An Online Peer Reviewed / Refereed Journal
Volume 3 | Issue 6 | June 2025
ISSN: 2583-973X (Online)
Website: www.theacademic.in

निराला के उपन्यास 'बिल्लेसुर बकरिहा' में सामाजिक यथार्थ

अंजनी कुमार

(शोधार्थी), हिन्दी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, ईमेल- anjanisharma1605@gmail.com

डॉ0 बालेन्द्र सिंह यादव

(शोध-निर्देशक एवं सह आचार्य), हिन्दी विभाग, डॉ0 अम्बेडकर राज0 स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ऊँचाहार-रायबरेली (यू0पी0)

DOI : https://doi.org/10.5281/zenodo.15861657

ARTICLE DETAILS

Research Paper

Accepted: 27-06-2025

Published: 10-07-2025

Keywords:

सामाजिक असमानता, प्रगतिशील, जातिवाद यथार्थ, वर्ण-भेद, निराला,

ABSTRACT

प्रथम विश्व युद्ध ने भारत को आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक रूप से प्रभावित किया। पश्चिमी सभ्यता के संपर्क में आने के कारण हम नवीन संस्कृति और सोच की ओर अग्रसर हो गये। जिसका प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा, जो साहित्य में एक नये परिवर्तन के रूप में सामने आया। बीसवीं शताब्दी स्वतंत्रता, नवीनता और विज्ञान का युग रहा है। नवीन विचारों ने साहित्य और समाज में बड़े परिवर्तन किये। सन् 1930 के पश्चात हिन्दी साहित्य में व्यापक बुनियादी परिवर्तन हुआ जिसकी दिशा यथार्थवाद की ओर थी। प्रगतिशील आन्दोलन ने यथार्थवाद को प्रश्रय दिया और साहित्यकारों में सामाजिक यथार्थवादी दृष्टिकोण को विकसित किया। तत्कालीन लेखकों ने समसामयिक सामाजिक परिस्थितियों विशेषकर मजदूरों-किसानों की दुर्दशा, गरीबी, असमानता, शोषण, जातिव्यवस्था, भेदभाव आदि समस्याओं को चित्रित करने पर ध्यान केन्द्रित किया। सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने भी इसी परम्परा का अनुसरण किया। निराला ने प्रगतिशील चेतना एवं सामाजिक यथार्थ से ओतप्रोत रचनाएँ लिखी हैं। उनके कथा साहित्य में

समाज के विभिन्न वर्गों के संघर्ष, गरीबी, अन्याय, सामाजिक असमानता का जीवंत चित्रण मिलता है। उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से सामाजिक कुरीतियों, रूढ़िवादिता, वर्ण-भेद आदि पर प्रहार किया तथा एक समतामूलक समाज की कल्पना प्रस्तुत की। उनका उपन्यास 'बिल्लेसुर बकरिहा' इन्हीं सामाजिक विषमताओं एवं विसंगतियों को उजागर करने वाला प्रगतिशील चेतना से युक्त यथार्थपरक उपन्यास है।

मूल आलेख:

साहित्य और समाज एक-दूसरे से संपृक्त हैं। साहित्य शरीर है तो समाज उसकी आत्मा, जो उसमें चेतना का संचार करती है। साहित्य युग सापेक्ष होती है, यही कारण है कि वह अपने युग की सामाजिक चेतना व यथार्थ से अस्पृष्ट नहीं रहता। सामाजिक यथार्थ, समाज की वास्तविक घटनाओं का यथातथ्य चित्रण प्रस्तुत करता है। सामाजिक विषमताओं, वर्गभेद, तथा व्यक्तिगत स्वार्थ से आक्रान्त, पीड़ित समाज की दयनीय परिस्थितियों को उसके वास्तविक रूप में प्रस्तुत करना सामाजिक यथार्थ का मुख्य का लक्ष्य है। साहित्यकार चित्रकार नहीं है, अत: वह यथार्थ को अपने अनुभवों एवं कल्पनाओं के द्वारा साहित्य में ढालता है। निराला के साहित्य में भी सामाजिक यथार्थ की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है।

निराला मूलतः कवि हैं, हालांकि उन्होंने बहुत-सा गद्य साहित्य भी लिखा है। कथाकार के रूप में उन्होंने कई यथार्थपरक उपन्यास एवं कहानियों की रचना की है। 'बिल्लेसुर बकरिहा' निराला का बहुचर्चित व्यंग्य-उपन्यास है। स्वयं रचनाकार ने इसे 'हास्य के लिए एक स्केच' कहा है। 'बिल्लेसुर बकरिहा' प्रगतिशील साहित्य का नमूना है,[1] जो अंधविश्वास, रूढ़िवाद, पाखण्ड और जातिवाद के विरुद्ध प्रगतिवादी दृष्टिकोण को विकसित करता है। इसका रचनाकाल 1941 ई0 है, अर्थात वह समय जो आजादी की लड़ाई लड़ते हुए भारतीय समाज के भीतर के संघर्षों से उभरकर राष्ट्रीय राजनीति के फलक पर आ जाने का समय है। विभिन्न आन्दोलनों की असफलता, सामाजिक क्रूर मान्यताएँ, आर्थिक पराभव, दमन एवं शोषण का नंगा नृत्य कथाकार ने स्वयं देखा और भोगा था। निराला समय और समाज के इस आलोड़न के बीच से एक कथा चुनकर सामने लाते हैं, जिसमें तत्कालीन सामाजिक यथार्थ और प्रगतिशीलता का लेखा-जोखा मौजूद हैं। इस उपन्यास का मुख्य पात्र 'बिल्लेसुर' (बिल्लेश्वर) है, जो जीवन-संग्राम का अजेय योद्धा है। परम्परावादी समाज के बीच वह प्रगतिशील सोच का परिचायक है। बिल्लेसुर के माध्यम से निराला ने अभाव एवं संघर्ष के बीच जूझते मनुष्य का चित्रण किया है जो

विद्रोही रूप लिये हुए हैं। इस उपन्यास में निराला का द्वंद्व और आत्मसंघर्ष भी समाहित हो गया है। हालांकि यहाँ रचनाकार के अलावा समाज ज्यादा स्थूल ढंग से उपस्थित हुआ है इसलिए रचनाकार का 'स्व' सामाजिक सत्य में घुल-मिल गया है। बिल्लेसुर जाति के ब्राह्मण (तरी के सुकुल) हैं। बिल्लेसुर बकरी के व्यवसाय तक अचानक नहीं पहुँचते। निराला ने बिल्लेसुर के इस जीवन-संघर्ष के प्रसंग को ऐसे बुना है, कि उनसे जुड़कर सामाजिक यथार्थ सहजता से तार्किक परिणति तक पहुँच जाता है। 'बिल्लेसुर' के पिता 'मुक्ताप्रसाद' के चार पुत्रों यथा- मन्नी, ललई, बिल्लेसुर और दुलारे में 'बिल्लेसुर' तीसरे पुत्र हैं। माता-पिता की मृत्यु के बाद चारों भाइयों में मतभेद उत्पन्न हुआ जिससे काम में विघ्न पड़ने लगा। अंततः चारों भाइयों ने अपना-अपना रास्ता अलग चुन लिया। बिल्लेसुर को जीवन-निर्वाह के लिए पैतृक संपत्ति नाकाफी लगी। लेकिन उस समय उनके पास बकरी पालन का विचार नहीं था क्योंकि अभी वे जाति-धर्म की नैतिकता से मुक्त नहीं पाये थे। अतः आजीविका की खोज में बिल्लेसुर साढ़े सात सौ कोस दूर बर्दवान पहुँच गये। यहां पं0 सत्तीदीन के यहाँ खजांची की नौकरी कर ली। इस नौकरी के बाद वे जिस जीवन-अनुभव से गुजरते हैं, वह उन्हें गाँव वाला बिल्लेसुर नहीं रहने देता। सत्तीदीन की पत्नी के कहने पर बिल्लेसुर को गायों का चारा-पानी का काम भी सौंप दिया गया, इसके एवज में दोनों वक्त खाना देने की बात कही।

निराला ने 'बिल्लेसुर बकरिहा' उपन्यास की रचना उस समय की है जब अँगरेजी शासन से मुक्ति का संघर्ष निर्णायक बिन्दु पर था, साथ ही वर्ण-जाति की सामाजिक गुलामी से वैयक्तिक मुक्ति का संघर्ष भी गूँज रहा था। देश में प्रगतिशील समाज का निर्माण हो रहा था। बिल्लेसुर उसी वैयक्तिक मुक्ति का उद्घोषक बनकर हमारे सामने आता है। वस्तुत: धीरे-धीरे जाति-धर्म संबंधी बंधन ढीले पड़ने लगते हैं, टूटने लगते हैं। मनुष्य धर्म ऊपर उठने लगता है। "बिल्लेसुर जीवन-संग्राम में उतरे। पहले गायों के काम की बहुत सी बातें न कहीं गयी थीं, वे सामने आयीं। गोबर उठाना, जगह साफ करना, मूत पर राख छोड़ना, कंडे पाथना, कभी-कभी गायों को नहलाना आदि भीतरी बहुत-सी बातें थीं।"[2] इसके अलावा भी उसने ऐसे श्रमसाध्य कार्यों को किया, जिससे उसे धनलाभ हो सके। इसके लिए उसने बारह कोस तक चिट्ठियाँ बाँटी, सिपाही का भी काम किया।

इस उपन्यास में निराला ने समाज में व्याप्त अंधविश्वास का यथार्थ-चित्रण कर उसके सुदृढ़ किले को ध्वस्त करने का प्रयास किया है। उन्होंने दर्शाया है कि किस तरह व्यक्ति की आस्था चोटिल होती है तो वह अनास्था की ओर उन्मुख हो जाता है। जगन्नाथ जी के दर्शन और मनौती माँगने, हर सोमवार घी का दीपक जलाने पर भी सत्तीदीन की पत्नी को संतान की प्राप्ति नहीं होती है। "जब एक साल तक पुत्र-विषय में बाबा जगन्नाथ जी ने कृपा न की तब सत्तीदीन की स्त्री का देवता पर कोप चढ़ा और वे

दिव्य शक्ति को छोड़कर मनुष्य-शक्ति की पक्षपातिनी बन गईं- यथार्थवादी देखकर की तरह।"[3] बिल्लेसुर भी सत्तीदीन से गायत्रीमंत्र का गुरुमंत्र लेने पर भी कोई सार्थक परिवर्तन नहीं हुआ तो उसने कर्म को महत्त्व दिया। प्रतिदिन महावीर के चरणों में प्रणाम करके बकरियों के कल्याण की प्रार्थना करने पर भी उसके बकरे की हत्या हो जाती है। यहीं से उसके हृदय से महावीर के प्रति आस्था की भी हत्या हो जाती है। बिल्लेसुर मूर्ति के सामने कहता है, "देख, मैं गरीब हूँ। तुझे सब लोग गरीबों का सहायक कहते हैं, मैं इसीलिए तेरे पास आता था, और कहता था, मेरी बकरियों को और बच्चों को देखें रहना। क्या तूने रखवाली की, बता, लिए थूथन-सा मुँह खड़ा है?"[4] वह महावीर की मूर्ति पर डण्डा भी मारता है। वस्तुत: यहाँ निराला की प्रगतिवादी विचारधारा का भी प्रभाव दिखाई पड़ता है। प्रगतिवाद धर्म और ईश्वर पर विश्वास नहीं करता, उसे शोषण का हथियार मानता है। वह मानवता की अपरिमित शक्ति पर विश्वास रखता है।

समाज में वर्ण एवं जातिगत सिद्धांतों ने जो विभाजन मनुष्य के बीच उत्पन्न किया, उसने सदियों तक मानव-जीवन को बनावटी नैतिकता और मूल्यों में बाँधकर रखा और आज भी रखे हुए हैं। लेकिन, पुरातन से ही इसी समाज में इन बंधनों को चुनौतियाँ मिलती रहीं हैं। जैन एवं बौद्ध आदि धार्मिक आन्दोलन, इसके उदाहरण हैं। बीसवीं सदी में भी आर्य समाज, ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, सत्यशोधक समाज आदि विभिन्न धार्मिक एवं सामाजिक सुधार आन्दोलनों ने वर्ण एवं जाति-व्यवस्था का विरोध किया। वर्ण-जाति के आधार पर व्यवसाय तक निर्धारित था। हालांकि आंशिक परिवर्तन के साथ वर्ण एवं जातिगत समस्या अभी भी गंभीर बनी हुई है, जिसका भविष्य निश्चित नहीं है। निराला 'इस उपन्यास में इसी परम्परागत मानसिकता पर चोट करते हुए सामाजिक यथार्थ का जीवंत चित्रण करते हैं। जब बिल्लेसुर की हालत नहीं सुधरी तो गाँव आ गया तथा जातीय दम्भ को तिलांजलि देकर बकरी पालने पालने का व्यवसाय अपना लिया। यही से वह बिल्लेसुर से 'बिल्लेसुर बकरिहा' बन जाता है। निराला लिखते हैं, "बिल्लेसुर जाति के ब्राह्मण हैं, 'तरी' के सुकुल हैं, खेमे वाले के पुत्र खय्याम की तरह किसी बकरी वाले के पुत्र बकरिहा नहीं। लेकिन तरी के सुकुल को संसार पार करने की तरी नहीं मिली, तब बकरी का कारोबार किया।"[5] यही से उसका नाम 'बिल्लेसुर' से 'बिल्लेसुर बकरिहा' पड़ जाता है। यहाँ 'हा' का अर्थ 'हनन' नहीं बल्कि 'पालन' के अर्थ में प्रयोग हुआ है। जाति के अनुसार पेशा अपनाने का प्रतिबंधित नियम इस समाज की वर्णवादी व्यवस्था की अपनी विशेषता है। भेदभाव, छुआछूत आदि सामाजिक समस्याएँ इससे अभिन्न रूप से जुड़ी हुई हैं, खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में। हालांकि, कानूनी रूप से इसको प्रतिबंधित किया गया है लेकिन, सामाजिक और व्यावहारिक रूप से यह आज भी एक बहुत बड़ी समस्या है। बिल्लेसुर बकरी पालने से अपनी जाति से अलगाव की बात को लेकर मुक्त हो चुका है।

जब बिल्लेसुर गाँव में बकरी चराने के लिए निकलते हैं तो लोग उसे उस नज़र से देखते हैं जैसे उसने कोई अक्षम्य अपराध कर दिया हो, लेकिन इससे बिल्लेसुर निश्चिंत है। रामदीन के ब्राह्मण होकर बकरी पालने की बात पर भी उसने कोई जवाब देना उचित नहीं समझा। चलते हुए बिल्लेसुर ने मन ही मन कहा, "जब जरूरत पर ब्राह्मणों को हल की मूठ पकड़नी पड़ती है, जूते की दुकान खोलनी पड़ी है, तब बकरी पालना कौन बुरा काम है।"[6] इतना ही नहीं बिल्लेसुर बकरियों का दूध बेचने लगे, सफलता नहीं मिली तो घी और खोये का व्यवसाय शुरू कर दिया।

ब्रिटिश शासनकाल में सामाजिक मानवविज्ञानी 'एफ0 जी0 बेली' ने 'जातियों की आर्थिक परिधि' नाम से एक पुस्तक लिखी। इस पुस्तक में उन्होंने तत्कालीन भारत में जाति और आर्थिक परिवर्तन के मध्य संबंधों का अध्ययन किया है। जिसमें जाति-व्यवस्था को एक गतिशील संरचना बताया गया जो समय के साथ परिवर्तित होती रहती है। एफ0 जी0 बेली ने तर्क दिया कि भारत में जाति-व्यवस्था आर्थिक विषमता का प्रमुख कारक है, जो गरीबी और असमानता को बढ़ावा देती है। यह सत्य है कि जाति-व्यवस्था सामाजिक स्तरीकरण का तो कारण बनती ही हैं, साथ ही अवसरों एवं संसाधनों तक पहुँच को भी प्रभावित करती है। समाज में लोग अपनी जाति में भी जाति खोज लेते हैं। एक ही वर्ण अथवा जातियाँ भौगोलिक क्षेत्र के अनुसार भी स्वयं को भिन्न मानने लगी हैं। उनमें न केवल ऊँच-नीच, भेदभाव जैसी समस्याएँ उत्पन्न हुईं बल्कि वैवाहिक रिश्ते पर प्रतिबंध भी लगने लगे। निराला की रचनाओं में जातिवाद के कारण विवाह में प्रतिबंधों पर अनेक वर्णन मिलते हैं। 'सरोजस्मृति' कविता में इसकी छाया और भी करुण और सघन होकर परिलक्षित होती है। इस उपन्यास में भी निराला ने जातिगत वैवाहिक प्रतिबंधों का कारुणिक चित्रण किया है। तरी का सुकुल होने के कारण भाई मन्नी का विवाह नहीं हो रहा था जिसके लिए लिए उसे झूठ का भी सहारा लेना पड़ता है। कहना ना होगा, ऐसे विवाह की बातचीत में अत्युक्ति ही प्रधान होती है, अर्थात झूठ ही अधिक यानी एक पैसे की हैसियत एक लाख की बतायी जाती है।[7] इसी समस्या का सामना बिल्लेसुर को भी करना पड़ता है। अपने से ऊँचे कुल में विवाह करने पर किसी अनहोनी की शंका बिल्लेसुर को हमेशा रही है। त्रिलोचन के बिल्लेसुर से बड़े कुल में शादी कराने की बात पर वह मन्नू वाजपेयी का उदाहरण देता है कि कैसे ऊँचे कुल में शादी करने के कारण लड़की विधवा हो गयी। अंततः मन्नी की सास उसकी शादी कराती है, इसके लिए भी बिल्लेसुर को लड़की पक्ष को 30 रुपये नकद और बाद में भी परिवार की आर्थिक सहायता का जिम्मा लेना पड़ता है। जो समाज में जातिगत वैवाहिक समस्या को उजागर करता है।

निराला प्रगतिशीलता एवं नवीनता के पक्षधर रहे हैं। देश और समाज का विकास भी तभी संभव है जब वह प्रगतिशील रहे। एक पूर्व-निर्मित लीक पर चलने से समाज विकसित नहीं हो सकता, इसलिए

समय के अनुसार परिवर्तन आवश्यक हो जाता है। औपनिवेशिक शासन के समय पश्चिमी खानपान, रहन-सहन आदि के प्रभाव से शहरी समाज तथा नये उभरते मध्यवर्ग की जीवनशैली में बदलाव आया, जिससे भारतीय समाज में भी ऐसी वस्तुओं की माँग होने लगी। जातिगत पेशे की बाध्यता के कारण कुछ आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन नहीं होता था। ऐसे अनेक काम थे जिनको उच्च वर्ण हीन समझकर नहीं करता था। बिल्लेसुर को भी इस समस्या का सामना करना पड़ा। उसे को बकरी पालन के साथ-साथ अतिरिक्त आय की आवश्यकता महसूस हुई। इसके लिए उसने अपने छोटे से खेत में शकरकन्द की खेती करने का निश्चय किया। यह प्रगतिशील खेती को सन्दर्भित करती है। हालांकि उसे यह ज्ञात था कि समाज उसका मजाक बनाएगा, लेकिन उसकी प्रगतिशील सोच ने उसे दरकिनार कर दिया। यह प्रगतिशीलता उसने अपने जीवन की किताब पढ़कर अपनाया था। उसे मालूम था कि जिस कार्य पर समाज हँसता है, कार्य के फलीभूत होने पर वही समाज उसी कार्य को अपनाता भी है। वह स्वयं फावड़ा लेकर खेत में पहुँचते हैं। फावड़े से खेत गोड़ते देख कर गाँव के लोग मजाक करने लगे, लेकिन बिल्लेसुर बोले नहीं, काम में जुटे रहे। दुपहर होते-होते काफी जगह गोड़ डाली। देखकर छाती ठण्डी हो गयी। दिल को भरोसा हुआ कि छः-सात दिन में अपनी मिहनत से बकरे का घाटा पूरा कर लेंगे।[8] बिल्लेसुर का परिश्रम सार्थक सिद्ध हुआ और उसने 70 रुपये की शकरकन्द बेची। श्रम के इस वर्ण-विपर्यय से वह समृद्ध हो जाता है। लेकिन, वर्ण एवं जाति भेद पर स्थिर इस समाज में श्रम ज्ञान का विषय नहीं बनता बल्कि चर्चा होती है कि बिल्लेसुर को कारूँ का ख़ज़ाना हाथ लगा है या बर्दवान में उसे सोने की ईंटें मिल गयी हैं। यहाँ तक कि सत्तीदीन के यहाँ से जवाहरात चुरा लाने की मनगढ़न्त कहानी भी फ़ैल जाती है।[9]

समाज में किसी भी श्रमिक का श्रम रहस्य का विषय नहीं बनता है। लेकिन, जहाँ बिना श्रम के जीवन है, जहाँ दूसरों के श्रम पर टिका सुख है, वैभव है, दूसरे के श्रम की लूट है, चोरी है, श्रम की महत्ता कम है, वहाँ रहस्य की तलाश है।[10] वहाँ नया व्यवसाय, रोजगार एक रहस्य ही रहता है क्योंकि श्रम की सामाजिक गतिशीलता का ज्ञान वर्ण-विभाजन से निर्मित चेतना के कारण संकुचित हो जाता है। यही यथार्थ निराला बिल्लेसुर के माध्यम से व्यक्त करते हैं। गाँव के जमींदार से लेकर बिल्लेसुर की जाति के लोग हमेशा उसकी समृद्धि का रहस्य जानने और लूटने की जुगत में लगे रहते हैं। निस्संदेह समृद्धि समाज में व्यक्ति के मान-सम्मान में वृद्धि करती है, बिल्लेसुर इसका प्रमाण है। बिल्लेसुर की विपन्नता के समय जो उसके दरवाजे से बिना कुछ बोले निकल जाते थे, वही अब उसकी खुशामद करने लगते हैं।

वस्तुत: निराला ने इस उपन्यास में उस सामाजिक यथार्थ को चित्रित किया जिससे होकर हम आज भी गुजर रहे हैं। इसीलिए बिल्लेसुर का संघर्ष उसका निजी संघर्ष नहीं है, बल्कि सामूहिक संघर्ष का प्रतीक है; जो समाज के शोषित वर्गों द्वारा अपने अधिकारों एवं न्याय के लिए किया जाता है। यही विशेषता निराला को मानवतावादी रचनाकारों की अग्रगण्य श्रेणी में शामिल करती है लक्ष्मी पाण्डेय लिखते हैं, "वे विश्वबन्धुत्व के उद्देश्य को लेकर कथा रचते हैं, यही उनकी मानवतावादी दृष्टि है, जो उन्हें महामानव 'निराला' बनाती है। मानवीय संवेदना से परिपूर्ण संसार के प्रति राग उत्पन्न करते हैं और राग के बीच वैराग्य को धारण किए रहने का संदेश भी देते हैं।"[11]

निष्कर्ष

निराला आधुनिक बोध, प्रगतिशील और मानवतावादी दृष्टि के आलोक में बदलते हुए सामाजिक यथार्थ को रचना-रूप देते हैं। उनकी रचना-प्रक्रिया में द्वन्द्व और आत्मसंघर्ष की उपस्थिति बहुत सघन है, और यह आधुनिक मनुष्य का प्राथमिक लक्षण है। 'बिल्लेसुर बकरिहा' में यही दोनों गुणों की उपस्थिति प्रमुखता से देखने को मिलती है। हास्य-व्यंग्य के संतुलन के साथ निराला तत्कालीन समाज के उस भयानक यथार्थ का चित्रण किया है जो वर्तमान में भी भयावह है। इस उपन्यास में बिल्लेसुर के माध्यम से निराला स्वयं की कहानी भी व्यक्त कर देते हैं। उन्होंने उस कटु यथार्थ से परदा हटाया है जो कहीं न कहीं समाज को अंदर से खोखला कर रहा है। वे सामाजिक परिवर्तन के पक्षधर थे और इसीलिए उनके साहित्य में प्रगतिशीलता के तत्त्व मिलते हैं। बिल्लेसुर की गहरी जिजीविषा निराला की उसी प्रगतिशीलता का परिणाम है जो सामाजिक विषमताओं और विसंगतियों के बीच फँसे मनुष्य को धैर्य, निडरता एवं साहस के साथ निरन्तर कर्म करने की प्रेरणा देती है। उन्होंने बिल्लेसुर के माध्यम से अंधविश्वास, रूढ़िवाद, ऊंच-नीच, भेदभाव, जातिवाद पर चोट करके समाज को प्रगतिशीलता के पथ पर आगे बढ़ने का आह्वान किया है। छोटे कलेवर का यह व्यंग्य उपन्यास शहरी और ग्रामीण दोनों के कटु यथार्थ को चित्रित करता है। इसमें सामाजिक यथार्थ एवं वास्तविक जीवन संघर्ष तो है ही, साथ ही साथ नवीनता का पुट भी है। निराला यहाँ आधुनिक बोध के विवेकशील अग्रदूत बनकर सामने आते हैं।

सन्दर्भ-सूची:

1. निराला, सूर्यकान्त त्रिपाठी. (2023). बिल्लेसुर बकरिहा. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, छठा संस्करण, पृ0-13
2. वही, पृ0- 24
3. वही, पृ0- 32
4. वही, पृ0- 46

5. वही, पृ0- 15

6. वही, पृ0- 37

7. वही, पृ0- 16-17

8. वही, पृ0- 48

9. वही, पृ0- 74

10. सिंह, दुर्गा.)2020(. जाति के झूठे वर्णवादी आधारों का प्रत्याख्यान है बिल्लेसुर बकरिहा, समकालीन जनमत) पत्रिका(

11. पाण्डेय, लक्ष्मी. (2017). निराला का साहित्य, दिल्ली: अनुग्या प्रकाशन, पृ0- 235